IMPACT FACTOR 7.50 (SJIAI)

बिहार शोध समागम
BIHAR SHODH SAMAAGAM

Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 4, Issue 3 July-September, 2026
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
https://doi.org/10.5281/zenodo.23480073

ISSN : 3048-6971

वैज्ञानिक वानिकी और औपनिवेशिक पूंजीवाद भारत में: वन प्रबंधन का एक ऐतिहासिक विश्लेषण, 1858–1947

Arti kumari
शोधार्थी, इतिहास विभाग
राँची यूनिवर्सिटी,राँची
Artik7855@gmail.com

सार

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के तहत वैज्ञानिक वानिकी की शुरुआत ने भारतीय वनों के प्रबंधन, उपयोग और प्रशासन में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन को चिह्नित किया। यद्यपि इसे तर्कसंगत संसाधन प्रबंधन और निरंतर इमारती लकड़ी उत्पादन की एक प्रणाली के रूप में प्रस्तुत किया गया था, वैज्ञानिक वानिकी औपनिवेशिक पूंजीवाद की व्यापक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के भीतर विकसित हुई। रेलवे निर्माण, जहाज निर्माण, सार्वजनिक निर्माण और वाणिज्यिक उद्योगों के लिए इमारती लकड़ी की बढ़ती मांग ने औपनिवेशिक राज्य को प्रशासनिक और आर्थिक प्राथमिकताओं के अनुसार वनों को पुनर्गठित करने के लिए प्रोत्साहित किया। 1865, 1878 और 1927 के भारतीय वन अधिनियमों ने उत्तरोत्तर वन संसाधनों पर राज्य के अधिकार को मजबूत किया, जिससे औपनिवेशिक सरकार, वन-आश्रित समुदायों और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंध बदल गए। यह विकास वैज्ञानिक ज्ञान, वाणिज्यिक शोषण और औपनिवेशिक शक्ति के बीच संबंध के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्न उठाता है।

यह लेख इस बात की जाँच करता है कि कैसे वैज्ञानिक वानिकी ने 1858 और 1947 के बीच ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन के आर्थिक और प्रशासनिक उद्देश्यों में योगदान दिया। यह वन कानून, इमारती लकड़ी के निष्कर्षण, रेलवे विस्तार और परम्परागत वन अधिकारों के नियमन के बीच संबंध की जाँच करता है। पूर्वी भारत, विशेष रूप से छोटा नागपुर क्षेत्र में आदिवासी समुदायों और वन-आश्रित आजीविकाओं के लिए औपनिवेशिक वन प्रबंधन के परिणामों पर विशेष ध्यान दिया गया है। यह अध्ययन औपनिवेशिक वन कानूनों, वन विभाग की रिपोर्टों, वन कार्य योजनाओं, जिला गजेटियरों, प्रशासनिक अभिलेखों और प्रासंगिक द्वितीयक साहित्य की आलोचनात्मक जाँच पर आधारित एक ऐतिहासिक-विश्लेषणात्मक पद्धति को अपनाता है। वन प्रशासन को औपनिवेशिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के व्यापक ढाँचे के भीतर रखकर, यह संसाधन प्रबंधन, राज्य नियंत्रण और वन संसाधनों तक पहुँच के बदलते पैटर्न के बीच संबंधों का पता लगाता है।

लेख तर्क देता है कि ब्रिटिश भारत में वैज्ञानिक वानिकी ने एक साथ संगठित वन प्रबंधन की एक प्रणाली और औपनिवेशिक आर्थिक शासन के एक साधन के रूप में कार्य किया। यद्यपि इसने वन वर्गीकरण, कटाई और पुनर्जनन के व्यवस्थित तरीकों को पेश किया, इसका कार्यान्वयन इमारती लकड़ी, राजस्व और प्रशासनिक अधिकार के लिए साम्राज्यवादी माँगों से काफी हद तक आकार लेता था। इन प्राथमिकताओं ने वनों के साथ परम्परागत संबंधों को बदल दिया और औपनिवेशिक नियमों और वन-आश्रित समुदायों की आजीविका प्रथाओं के बीच तनाव पैदा किया। लेख आगे वन पारिस्थितिक तंत्रों के लिए वाणिज्यिक वानिकी के निहितार्थों की जाँच करता है, साथ ही प्रलेखित ऐतिहासिक परिवर्तनों को व्यापक पारिस्थितिक व्याख्याओं से अलग करता है। वैज्ञानिक वानिकी और औपनिवेशिक पूंजीवाद के बीच संबंध का आलोचनात्मक विश्लेषण करके, यह अध्ययन भारतीय पर्यावरण इतिहास में योगदान देता है और दर्शाता है कि कैसे संसाधन प्रबंधन के लिए प्रतीत होने वाले तकनीकी दृष्टिकोण आर्थिक शक्ति और राजनीतिक अधिकार की असमान संरचनाओं में अंतर्निहित थे।

मुख्य शब्द: वैज्ञानिक वानिकी, औपनिवेशिक पूंजीवाद, वन कानून, ब्रिटिश भारत।

परिचय

ब्रिटिश भारत में वैज्ञानिक वानिकी का इतिहास बताता है कि कैसे पर्यावरण प्रबंधन औपनिवेशिक आर्थिक और प्रशासनिक प्राथमिकताओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ गया। उन्नीसवीं शताब्दी के दौरान, ब्रिटिश सरकार ने वनों को ऐसे संसाधनों के रूप में देखना शुरू कर दिया जिनके लिए व्यवस्थित वर्गीकरण, नियमन और वाणिज्यिक दोहन की आवश्यकता है। वन रेलवे निर्माण, सार्वजनिक निर्माण, जहाज निर्माण और अन्य उद्योगों के लिए इमारती लकड़ी की आपूर्ति करते थे, साथ ही उन समुदायों की आजीविका का भी समर्थन करते थे जिनकी वन संसाधनों तक पहुँच परम्परागत प्रथाओं द्वारा शासित थी। परिणामस्वरूप वैज्ञानिक वानिकी के विकास ने न केवल पेड़ों के प्रबंधन को बल्कि औपनिवेशिक राज्य, स्थानीय समुदायों और प्राकृतिक पर्यावरण के बीच संबंध को भी बदल दिया। वैज्ञानिक वानिकी ने संगठित प्रबंधन सिद्धांतों के अनुसार वनों के मापन, वर्गीकरण, कटाई और पुनर्जनन को बढ़ावा दिया। हालाँकि, भारत में इसकी शुरुआत को केवल एक पारिस्थितिक या तकनीकी विकास के रूप में नहीं समझा जा सकता। यह औपनिवेशिक शासन की व्यापक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के भीतर उभरी, जिसमें राज्य ने रणनीतिक संसाधनों को सुरक्षित करने, राजस्व उत्पन्न करने और भूमि पर अपने अधिकार को मजबूत करने की कोशिश की। गुहा (1983) दर्शाते हैं कि औपनिवेशिक वन प्रशासन ने उत्तरोत्तर परम्परागत अधिकारों को प्रतिबंधित किया, जबकि गाडगिल और गुहा (1993) प्राकृतिक संसाधनों के औपनिवेशिक परिवर्तन को औद्योगिक विस्तार के व्यापक पारिस्थितिक परिणामों के भीतर रखते हैं। 1865, 1878 और 1927 के भारतीय वन अधिनियम वनों पर राज्य के नियंत्रण के संस्थागतकरण में महत्वपूर्ण चरण थे। इन कानूनों ने वन पहुँच, इमारती लकड़ी के निष्कर्षण और वन उपज के नियमन को सुगम बनाया।

हालाँकि, उनका कार्यान्वयन क्षेत्रों में भिन्न था और स्थानीय राजनीतिक व्यवस्थाओं, पारिस्थितिक स्थितियों और प्रशासनिक प्राथमिकताओं द्वारा आकार लेता था। यह लेख 1858 और 1947 के बीच वैज्ञानिक वानिकी की जाँच संसाधन प्रबंधन की एक प्रणाली और औपनिवेशिक शासन के एक साधन दोनों के रूप में करता है। यह तीन परस्पर जुड़े विषयों पर केंद्रित है: वैज्ञानिक वानिकी और वन कानून का उदय; वाणिज्यिक वानिकी, रेलवे और औपनिवेशिक पूंजीवाद के बीच संबंध; और आदिवासी समुदायों और वन पर्यावरणों के लिए वन प्रबंधन के परिणाम। यह तर्क देता है कि वैज्ञानिक वानिकी ने व्यवस्थित प्रबंधन प्रथाओं को पेश किया और साथ ही वनों को साम्राज्यवादी आर्थिक नेटवर्क में एकीकृत किया और समुदायों और उनके पर्यावरणों के बीच स्थापित संबंधों को बदल दिया।

वैज्ञानिक वानिकी का उदय और औपनिवेशिक नियंत्रण का संस्थागतकरण

भारत में वैज्ञानिक वानिकी का विकास उन्नीसवीं शताब्दी के व्यवस्थित वन प्रबंधन की ओर एक व्यापक आंदोलन का हिस्सा था। यूरोपीय वानिकी प्रथाओं, विशेष रूप से जर्मन सिल्वीकल्चर से जुड़ी प्रथाओं ने नियोजित कटाई, वृक्ष भंडार के पुनर्जनन, वन सूचियों और इमारती लकड़ी के निरंतर उत्पादन पर जोर दिया। ब्रिटिश प्रशासकों ने इन दृष्टिकोणों को भारतीय परिस्थितियों के अनुकूल बनाया, हालांकि उनका अनुप्रयोग औपनिवेशिक शासन की आर्थिक और राजनीतिक आवश्यकताओं द्वारा आकार लेता था।

एक प्रमुख संस्थागत विकास 1864 में हुआ, जब औपनिवेशिक सरकार ने इंपीरियल फॉरेस्ट डिपार्टमेंट की स्थापना की और डाइट्रिच ब्रांडिस को इसका पहला इंस्पेक्टर जनरल ऑफ फॉरेस्ट्स नियुक्त किया। ब्रांडिस ने वन प्रबंधन के लिए प्रशासनिक प्रक्रियाओं को विकसित करने में मदद की और व्यवस्थित कार्य योजनाओं के उपयोग को बढ़ावा दिया। इन उपायों ने राज्य के दृष्टिकोण से वन संसाधनों को अधिक अनुमानित और प्रबंधनीय बनाने की कोशिश की। इस प्रकार वैज्ञानिक वानिकी ने तकनीकी ज्ञान को नौकरशाही अधिकार के विस्तार के साथ जोड़ा। 1865 के भारतीय वन अधिनियम ने वनों पर सरकारी नियंत्रण के लिए एक प्रारंभिक कानूनी आधार प्रदान किया। इस कानून के बाद 1878 का अधिक व्यापक भारतीय वन अधिनियम आया, जिसने वनों को वर्गीकृत करने और वन संसाधनों तक पहुँच को विनियमित करने के लिए राज्य की शक्तियों को मजबूत किया। 1927 के भारतीय वन अधिनियम ने बाद में वन प्रशासन, वन उपज और वन अपराधों से संबंधित महत्वपूर्ण प्रावधानों को समेकित किया (भारत सरकार, 1927)। ये कानून केवल प्रशासनिक साधन नहीं थे। उन्होंने राज्य और वन उपयोगकर्ताओं के बीच

कानूनी संबंध को बदल दिया। चराई, पेड़ काटना, वन उपज एकत्र करना और शिकार जैसी गतिविधियाँ वन की कानूनी स्थिति और लागू नियमों के आधार पर प्रतिबंधों या आधिकारिक अनुमति के अधीन हो सकती थीं। जिन प्रथाओं को समुदाय पहले स्थानीय रीति-रिवाज के अनुसार करते थे, उन्हें परिणामस्वरूप विनियमित या अनधिकृत गतिविधियों के रूप में पुनर्परिभाषित किया जा सकता था।

गुहा (1990), 1878 के वन अधिनियम के निर्माण की अपनी जाँच में, वन कानून को उन राजनीतिक बहसों और प्रतिस्पर्धी हितों के माध्यम से समझने के महत्व को दर्शाते हैं जिन्होंने इसके विकास को आकार दिया। औपनिवेशिक वानिकी प्रशासनिक विभागों, वाणिज्यिक आवश्यकताओं और वन संसाधनों के नियमन के बारे में चिंताओं के बीच बातचीत के माध्यम से उभरी। इसलिए इसे एक समान संरक्षण कार्यक्रम के सीधे अनुप्रयोग के रूप में नहीं समझा जाना चाहिए।

वैज्ञानिक वानिकी का ऐतिहासिक महत्व आंशिक रूप से वनों को पारिस्थितिक प्रणालियों के रूप में प्रबंधित करने और उन्हें वाणिज्यिक इमारती लकड़ी के स्रोतों के रूप में प्रबंधित करने के बीच के अंतर में निहित है। वैज्ञानिक तरीके पुनर्जनन का समर्थन कर सकते हैं और कटाई को विनियमित कर सकते हैं, लेकिन इन उद्देश्यों ने जरूरी नहीं कि सभी वन उपयोगों या पारिस्थितिक संबंधों को समान विचार प्राप्त हो। एक वन को इमारती लकड़ी उत्पादन के लिए व्यवस्थित रूप से प्रबंधित किया जा सकता था जबकि उसके संसाधनों तक परम्परागत पहुँच अधिक प्रतिबंधित हो गई।

शिवरामकृष्णन (1999) का औपनिवेशिक पूर्वी भारत का अध्ययन इस परिवर्तन पर एक महत्वपूर्ण क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। उनका विश्लेषण दर्शाता है कि वन प्रशासन राज्य-निर्माण, क्षेत्रीय राजनीतिक संरचनाओं, पारिस्थितिक स्थितियों और वन संसाधनों पर प्रतिस्पर्धी दावों के बीच बातचीत के माध्यम से विकसित हुआ। औपनिवेशिक राज्य ने केवल हर जगह एक समान मॉडल नहीं थोपा; बल्कि, वन शासन स्थानीय बातचीत और प्रशासनिक प्रथाओं के माध्यम से विकसित हुआ।

यह क्षेत्रीय परिप्रेक्ष्य छोटा नागपुर और पूर्वी भारत के व्यापक वन क्षेत्रों के अध्ययन के लिए विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। वन कानून के प्रभाव स्थानीय कार्यकाल व्यवस्थाओं, आजीविका के लिए वन संसाधनों के महत्व और औपनिवेशिक अधिकारियों और परम्परागत प्राधिकारियों के बीच संबंध पर निर्भर करते थे। परिणामस्वरूप, वैज्ञानिक वानिकी के इतिहास की जाँच न केवल कानून के शब्दों के माध्यम से बल्कि इसके कार्यान्वयन और वन संसाधनों तक पहुँच के आसपास के संघर्षों के माध्यम से भी की जानी चाहिए।

वाणिज्यिक वानिकी, रेलवे विस्तार और उपनिवेशवाद की राजनीतिक अर्थव्यवस्था

वैज्ञानिक वानिकी और औपनिवेशिक पूंजीवाद के बीच संबंध तब विशेष रूप से दिखाई देता है जब वन प्रशासन की जाँच रेलवे बुनियादी ढांचे के विस्तार के साथ की जाती है। रेलवे औपनिवेशिक अर्थव्यवस्था के लिए केंद्रीय थे क्योंकि उन्होंने लोगों, वस्तुओं, खनिजों और कृषि उत्पादों की आवाजाही को सुगम बनाया। उनके निर्माण और संचालन ने इमारती लकड़ी और ईंधन की भी पर्याप्त मांग पैदा की।

रेलवे स्लीपरों के लिए उपयुक्त इमारती लकड़ी की आवश्यकता थी, जबकि लोकोमोटिव शुरू में उन क्षेत्रों में काफी मात्रा में लकड़ी की खपत करते थे जहाँ कोयले की आपूर्ति सीमित थी या प्राप्त करना कठिन था। इसलिए रेलवे विकास ने वन संसाधनों को विस्तारित परिवहन नेटवर्क और वाणिज्यिक बाजारों से जोड़ा। औपनिवेशिक सरकार की रुचि न केवल इमारती लकड़ी निकालने में थी, बल्कि यह सुनिश्चित करने में भी थी कि आपूर्ति समय के साथ उपलब्ध बनी रहे।

दास (2013) 1860 और 1884 के बीच पंजाब में रेलवे ईंधन और वन परिवर्तन पर अपने अध्ययन में एक विशिष्ट उदाहरण प्रदान करती हैं। वह जाँचती हैं कि कैसे रेलवे विस्तार और जलाऊ लकड़ी की मांग ने क्षेत्र में वनों की कटाई में योगदान दिया, साथ ही औपनिवेशिक राज्य ने ईंधन आपूर्ति के बारे में चिंताओं पर कैसे प्रतिक्रिया दी। उनका शोध दर्शाता है कि रेलवे विकास और वनों के बीच संबंध ऐतिहासिक रूप से जटिल था: बुनियादी ढांचे ने वन संसाधनों की मांग पैदा की, जबकि आपूर्ति पर परिणामी दबाव ने प्रशासनिक प्रथाओं और ईंधन उपयोग में बदलाव को प्रोत्साहित किया।

पंजाब का मामला रेलवे विस्तार और वन दोहन के बीच एक प्रलेखित संबंध स्थापित करता है, लेकिन इसे स्वचालित रूप से ब्रिटिश भारत के हर क्षेत्र में सामान्यीकृत नहीं किया जाना चाहिए। निष्कर्षण की तीव्रता और परिणाम स्थानीय वनस्पति, रेलवे विकास, परिवहन आवश्यकताओं और वैकल्पिक ईंधन की उपलब्धता के अनुसार भिन्न थे। फिर भी, यह दर्शाता है कि कैसे साम्राज्यवादी बुनियादी ढांचा वनों के संगठन और उपयोग को प्रभावित कर सकता है।

वैज्ञानिक वानिकी ने इस आपूर्ति को विनियमित करने के लिए प्रशासनिक तकनीकें पेश कीं। वन सूचियाँ, कार्य योजनाएँ, विनियमित कटाई और पुनर्जनन प्रथाएँ अधिकारियों को इमारती लकड़ी की उपलब्धता का अनुमान लगाने और भविष्य के उत्पादन को व्यवस्थित करने में मदद कर सकती थीं। राज्य के दृष्टिकोण से, ऐसे तरीकों ने व्यावसायिक रूप से मूल्यवान संसाधनों की अधिक भरोसेमंद आपूर्ति का वादा किया। इस अर्थ में, वैज्ञानिक वानिकी निरंतर उत्पादन के साथ संगत थी, लेकिन स्थिरता के उद्देश्य के लिए सावधानीपूर्वक योग्यता की आवश्यकता है: भविष्य के निष्कर्षण के लिए इमारती लकड़ी के भंडार को बनाए रखना जरूरी नहीं कि जैव विविधता की रक्षा या परम्परागत अधिकारों को संरक्षित करने के बराबर हो।

गाडगिल और गुहा (1993) इस परिवर्तन को औद्योगिक संसाधन उपयोग और भारतीय पर्यावरणों के बीच व्यापक पारिस्थितिक मुठभेड़ के भीतर रखते हैं। वे तर्क देते हैं कि औपनिवेशिक शासन ने प्राकृतिक संसाधनों को नियंत्रित करने की राज्य की क्षमता को तेज कर दिया और उनके प्रबंधन को व्यापक आर्थिक हितों से जोड़ा। वन तेजी से एक साम्राज्यवादी प्रणाली का हिस्सा बन गए जिसमें कच्चे माल को बुनियादी ढांचे, व्यापार और प्रशासन का समर्थन करने के लिए संगठित किया गया था।

वानिकी का आर्थिक महत्व सरकारी राजस्व तक भी फैला। इमारती लकड़ी के निष्कर्षण और वन उपज को विनियमित करने से राज्य को व्यावसायिक रूप से मूल्यवान संसाधनों का प्रबंधन करने और उनकी आवाजाही पर अधिकार का प्रयोग करने की अनुमति मिली। इस प्रकार वन प्रशासन ने आर्थिक और राजनीतिक उद्देश्यों को जोड़ा: इसने आपूर्ति को सुरक्षित करने की कोशिश की, साथ ही यह परिभाषित किया कि कौन वन संसाधनों तक पहुँच सकता है और किन शर्तों के तहत।

हालाँकि, वैज्ञानिक वानिकी और पूंजीवाद के बीच संबंध को इस दावे तक सीमित नहीं किया जाना चाहिए कि हर वानिकी उपाय केवल तत्काल लाभ के लिए बनाया गया था। वन विभागों ने तकनीकी विशेषज्ञता भी विकसित की, पुनर्जनन प्रथाओं को पेश किया और संसाधन ह्रास के कुछ रूपों को रोकने का प्रयास किया। ऐतिहासिक प्रश्न यह है कि इन गतिविधियों को कैसे प्राथमिकता दी गई और उन्होंने किन हितों की सेवा की। कई परिस्थितियों में, इमारती लकड़ी उत्पादन के रखरखाव से वाणिज्यिक निष्कर्षण को मजबूती मिल सकती थी, भले ही इसके लिए कटाई की दर या तरीकों को विनियमित करने की आवश्यकता हो।

इसलिए औपनिवेशिक वन प्रणाली में एक महत्वपूर्ण तनाव था। इसके तकनीकी सिद्धांत वनों की निरंतर उत्पादकता का समर्थन कर सकते थे, जबकि इसके राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे ने अधिकार को राज्य में केंद्रित किया और वन संसाधनों के चुनिंदा उपयोगों को प्राथमिकता दी। इस तनाव को समझना वैज्ञानिक वानिकी की अधिक सटीक व्याख्या प्रदान करता है, बजाय इसके कि इसे या तो पूरी तरह से संरक्षणवादी या केवल अंधाधुंध शोषण से ज्यादा कुछ नहीं माना जाए।

आदिवासी अधिकार, वन आजीविका और पर्यावरणीय परिवर्तन

वन शासन के परिवर्तन के परिणाम इमारती लकड़ी की आपूर्ति और राजस्व के संग्रह से परे थे। वन भोजन, ईंधन, चारा, औषधीय सामग्री और कई ग्रामीण और आदिवासी समुदायों के लिए आवश्यक अन्य संसाधन प्रदान करते थे। उन्होंने परम्परागत प्रथाओं, स्थानीय अर्थव्यवस्थाओं और विशेष भू-दृश्यों के साथ लंबे समय से चले आ रहे संबंधों के माध्यम से विकसित पारिस्थितिक ज्ञान के रूपों का भी समर्थन किया। औपनिवेशिक वन नियंत्रण के विस्तार ने उन स्थितियों को बदल दिया जिनके तहत इन संसाधनों तक पहुँचा जा सकता था। वनों के वर्गीकरण और कटाई, चराई, शिकार और वन उपज एकत्र करने पर प्रतिबंधों की शुरुआत ने समुदायों की कुछ संसाधनों का परम्परागत प्रथाओं के अनुसार उपयोग करने की स्वतंत्रता को कम कर दिया। परिणाम क्षेत्रों में भिन्न थे, जो विशेष वनों की कानूनी स्थिति और स्थानीय अधिकारियों द्वारा लागू नियमों पर निर्भर करतेथे। गुहा (1983) तर्क देते हैं कि ब्रिटिश शासन के तहत

वन नीति ने उत्तरोत्तर परम्परागत अधिकारों को कम किया और राज्य वानिकी और वन-आश्रित आबादी के बीच संघर्ष पैदा किया। यह व्याख्या महत्वपूर्ण है क्योंकि यह वन कानून के सामाजिक परिणामों को पर्यावरण इतिहास के केंद्र में रखती है। वन नियमन केवल एक तकनीकी प्रक्रिया नहीं थी: इसने संसाधनों पर अधिकार का पुनर्वितरण किया और समुदायों और राज्य के बीच संबंध को बदल दिया।

निहितार्थ पूर्वी भारत के वन क्षेत्रों में विशेष रूप से महत्वपूर्ण थे। शिवरामकृष्णन (1999) दिखाते हैं कि पूर्वी भारत में औपनिवेशिक वन प्रशासन क्षेत्रीय राजनीतिक संरचनाओं, पर्यावरणीय स्थितियों और भूमि और संसाधनों पर प्रतिस्पर्धी दावों के बीच बातचीत के माध्यम से विकसित हुआ। यह दृष्टिकोण आदिवासी समुदायों को एक एकल, अविभेदित समूह के रूप में मानने या यह मानने के खिलाफ चेतावनी देता है कि औपनिवेशिक वानिकी ने पूरे क्षेत्र में समान परिणाम पैदा किए।

छोटा नागपुर में, वन-संबंधी शिकायतों की जाँच कृषि शोषण, भूमि हस्तांतरण, परम्परागत अधिकार और औपनिवेशिक हस्तक्षेप के अन्य रूपों के साथ-साथ की जानी चाहिए। इसलिए वन प्रतिबंधों और आदिवासी प्रतिरोध के बीच संबंध जटिल था। वन कानून संसाधनों तक पहुँच को प्रतिबंधित करके शिकायतों में योगदान कर सकते थे, लेकिन उन्हें बिरसा मुंडा के उलगुलान जैसे आंदोलनों का एकमात्र कारण नहीं बताया जाना चाहिए। विशेष आंदोलनों में वानिकी की भूमिका स्थापित करने के लिए समकालीन प्रशासनिक रिकॉर्ड, याचिकाओं, स्थानीय इतिहास और स्वयं आंदोलनों के विवरणों से साक्ष्य की आवश्यकता होती है।

औपनिवेशिक वानिकी पारिस्थितिक परिवर्तन के बारे में भी प्रश्न उठाती है। वाणिज्यिक प्रबंधन इस बात को प्रभावित कर सकता था कि किन वृक्ष प्रजातियों को प्राथमिकता दी गई, वनों की कटाई कैसे की गई और वन क्षेत्रों का पुनर्जनन कैसे किया गया। कुछ परिस्थितियों में, ये प्रथाएँ वन्यजीवों के लिए भोजन और आश्रय की उपलब्धता को बदल सकती थीं या वन पारिस्थितिक तंत्रों की संरचना को बदल सकती थीं। रेलवे निर्माण, खनन और बस्ती विस्तार उन भू-दृश्यों को और बदल सकते थे जिनमें जानवर रहते थे।

इन परिणामों का सावधानीपूर्वक मूल्यांकन किया जाना चाहिए। साक्ष्य कि एक वन को वाणिज्यिक इमारती लकड़ी के लिए प्रबंधित किया गया था, अपने आप में यह स्थापित नहीं करता कि जैव विविधता में गिरावट आई या किसी विशेष पशु प्रजाति ने अपने संचलन पैटर्न को बदल दिया। ऐसे दावों के लिए विशिष्ट ऐतिहासिक या पारिस्थितिक साक्ष्य की आवश्यकता होती है। बचाव योग्य तर्क यह है कि औपनिवेशिक भूमि उपयोग और वन प्रबंधन ने महत्वपूर्ण पर्यावरणीय स्थितियों को बदल दिया, जिससे ऐसी परिस्थितियाँ पैदा हुईं जिनमें पारिस्थितिक संबंध बदल सकते थे। वैज्ञानिक वानिकी के सामाजिक और पारिस्थितिक आयाम घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे। परम्परागत पहुँच पर प्रतिबंधों ने समुदायों द्वारा वन संसाधनों के उपयोग के तरीके को बदल दिया, जबकि वाणिज्यिक प्रबंधन ने वन पर्यावरणों के संगठन और उपयोग को बदल दिया। फिर भी परिणाम इलाकों में भिन्न थे और उन्हें बेदखली या पर्यावरणीय क्षरण के एकल पैटर्न तक सीमित नहीं किया जा सकता।

इसलिए एक ऐतिहासिक विश्लेषण को वन प्रबंधन के तकनीकी उद्देश्यों, औपनिवेशिक प्रशासन की आर्थिक प्राथमिकताओं और वन-आश्रित समुदायों के अनुभवों पर एक साथ विचार करना चाहिए। यह दृष्टिकोण बताता है कि कैसे वैज्ञानिक वानिकी इमारती लकड़ी के प्रशासनिक नियमन में सुधार कर सकती थी, जबकि साथ ही पहुँच, अधिकार और उन उद्देश्यों पर संघर्ष पैदा कर सकती थी जिनके लिए वनों का प्रबंधन किया जाना चाहिए।

निष्कर्ष

1858 और 1947 के बीच ब्रिटिश भारत में वैज्ञानिक वानिकी औपनिवेशिक शासन का एक महत्वपूर्ण घटक बन गई। वन कानूनों, प्रशासनिक संस्थाओं, कार्य योजनाओं और विनियमित कटाई के माध्यम से, औपनिवेशिक राज्य ने वन संसाधनों को वर्गीकृत करने और प्रबंधित करने के लिए नए तरीके विकसित किए। इन प्रथाओं ने इमारती लकड़ी उत्पादन और पुनर्जनन के लिए व्यवस्थित दृष्टिकोण पेश किए, लेकिन उनका विकास रेलवे बुनियादी ढांचे, वाणिज्यिक सामग्री, राजस्व और प्रशासनिक नियंत्रण के लिए साम्राज्यवादी आवश्यकताओं से घनिष्ठ रूप से जुड़ा था।

रेलवे नेटवर्क का विस्तार बुनियादी ढांचे और वन दोहन के बीच संबंध को दर्शाता है। पंजाब पर दास (2013) का

अध्ययन दर्शाता है कि कैसे रेलवे ईंधन की मांग ने वनों की कटाई में योगदान दिया और संसाधन की कमी के प्रति औपनिवेशिक राज्य की प्रतिक्रिया को प्रभावित किया। गुहा (1983, 1990), गाडगिल और गुहा (1993), और शिवरामकृष्णन (1999) द्वारा शोध आगे दिखाता है कि वन शासन ने परम्परागत अधिकारों को बदल दिया और आर्थिक प्राथमिकताओं, राज्य संस्थाओं, क्षेत्रीय स्थितियों और स्थानीय समुदायों के बीच बातचीत के माध्यम से विकसित हुआ।

इसलिए वैज्ञानिक वानिकी के परिणाम न तो पूरी तरह से संरक्षणवादी थे और न ही समान रूप से विनाशकारी। इसके तकनीकी तरीके इमारती लकड़ी संसाधनों के नियमन और पुनर्जनन का समर्थन कर सकते थे, जबकि इसके कार्यान्वयन ने अक्सर अन्य वन उपयोगों पर वाणिज्यिक उत्पादन और राज्य के अधिकार को विशेषाधिकार दिया। आदिवासी समुदायों और वन पारिस्थितिक तंत्रों पर प्रभाव क्षेत्रीय परिस्थितियों के अनुसार भिन्न थे और विशिष्ट ऐतिहासिक साक्ष्यों के माध्यम से जाँच की आवश्यकता है।

अंततः, वैज्ञानिक वानिकी को संसाधन प्रबंधन की एक प्रणाली और औपनिवेशिक राजनीतिक अर्थव्यवस्था के एक रूप दोनों के रूप में समझा जाना चाहिए। इसका महत्व उन तरीकों में निहित है जिनमें तकनीकी ज्ञान साम्राज्यवादी आर्थिक उद्देश्यों, वन पहुँच के पुनर्गठन और प्राकृतिक पर्यावरण के साथ मानवीय संबंधों के परिवर्तन से जुड़ गया। इन संबंधों का अध्ययन औपनिवेशिक पूंजीवाद और भारत में वन शासन की ऐतिहासिक नींव की अधिक सूक्ष्म समझ में योगदान देता है।

ग्रंथ सूची

1. ब्रांडिस, डी., 1897, इंडियन फॉरेस्ट्री. ओरिएंटल इंस्टीट्यूट

2. दास, पी. वी., 2013, औपनिवेशिक भारत में रेलवे ईंधन और वनों पर इसका प्रभाव: पंजाब का मामला, 1860–1884. मॉडर्न एशियन स्टडीज, 47(4), 1283–1309. https://doi.org/10.1017/S0026749X12000637

3. गाडगिल, एम., और गुहा, आर,1993, दिस फिशर्ड लैंड: एन इकोलॉजिकल हिस्ट्री ऑफ इंडिया, यूनिवर्सिटी ऑफ कैलिफोर्निया प्रेस

4. भारत सरकार, 1865, द इंडियन फॉरेस्ट एक्ट, 1865

5. भारत सरकार, 1878, द इंडियन फॉरेस्ट एक्ट, 1878

6. भारत सरकार, 1927, द इंडियन फॉरेस्ट एक्ट, 1927 (एक्ट नं. XVI ऑफ 1927), भारत सरकार

7. ग्रोव, आर. एच., 1995, ग्रीन इंपीरियलिज्म: कोलोनियल एक्सपेंशन, ट्रॉपिकल आइलैंड ईडन्स एंड द ओरिजिन्स ऑफ एनवायरनमेंटलिज्म, 1600–1860, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस

8. गुहा, आर., 1983, ब्रिटिश और पोस्ट-ब्रिटिश इंडिया में वानिकी: एक ऐतिहासिक विश्लेषण. इकोनॉमिक एंड पॉलिटिकल वीकली, 18(44), 1882–1896

9. गुहा, आर., 1990, एन अर्ली एनवायरनमेंटल डिबेट: द मेकिंग ऑफ द 1878 फॉरेस्ट एक्ट. द इंडियन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 27(1), 65–84, https://doi.org/10.1177/001946469002700103

10. गुहा, आर., और गाडगिल, एम.,1989, स्टेट फॉरेस्ट्री एंड सोशल कॉन्फ्लिक्ट इन ब्रिटिश इंडिया. पास्ट एंड प्रेजेंट, 123, 141–177

11. मल्लिक, ए., 2012, आदिवासियों के अधिकारों पर अतिक्रमण: 19वीं सदी के छोटा नागपुर और संथाल परगना में औपनिवेशिक वन नीति, प्रोसीडिंग्स ऑफ द इंडियन हिस्ट्री कांग्रेस, 73, 747–755

12. रंगराजन, एम.,1994, इंपीरियल एजेंडाज एंड इंडियाज फॉरेस्ट्स: द अर्ली हिस्ट्री ऑफ इंडियन फॉरेस्ट्री, 1800–1878, द इंडियन इकोनॉमिक एंड सोशल हिस्ट्री रिव्यू, 31(2), 147–167
https://doi.org/10.1177/001946469403100202

13. रंगराजन, एम., 1996, फेंसिंग द फॉरेस्ट्स: कंजर्वेशन एंड इकोलॉजिकल चेंज इन इंडियाज सेंट्रल प्रोविंसेस, 1860–1914, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस

14. रिबेंट्रॉप, बी., 1900, फॉरेस्ट्री इन ब्रिटिश इंडिया, गवर्नमेंट प्रिंटिंग ऑफिस

15. शिवरामकृष्णन, के., 1995, कोलोनियलिज्म एंड फॉरेस्ट्री इन इंडिया: इमेजिनिंग द पास्ट इन प्रेजेंट पॉलिटिक्स. कंपेरेटिव स्टडीज इन सोसाइटी एंड हिस्ट्री, 37(1), 3–40. https://doi.org/10.1017/S0010417500019514

16. शिवरामकृष्णन, के., 1999, मॉडर्न फॉरेस्ट्स: स्टेटमेकिंग एंड एनवायरनमेंटल चेंज इन कोलोनियल ईस्टर्न इंडिया, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस